आचार्य वसुनन्दिजी महाराज कृत 'प्रश्नबोध' का समग्र अनुशीलन : दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक एवं भाषिक परिप्रेक्ष्य में एक समीक्षात्मक अध्ययन

लेखकः

डॉ. आशीष जैन आचार्य 'शाहगढ़'

(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)

महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन

संयुक्त मंत्री – अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

सारांश

भारतीय ज्ञान-परम्परा में **प्रश्न** केवल जिज्ञासा का सूचक नहीं, बल्कि ज्ञान, आत्मचिन्तन और सत्य-अन्वेषण का प्रवेश-द्वार है। जैन परम्परा में प्रश्नोत्तर-पद्धति के माध्यम से गहन दार्शनिक एवं नैतिक तत्त्वों को सरल, सुबोध और व्यवहारोपयोगी रूप में प्रस्तुत करने की समृद्ध परम्परा रही है। इसी परम्परा में आचार्य वसुनन्दिजी महाराज जी महाराज की मौलिक प्राकृत कृति **'प्रश्नबोध'** विशिष्ट महत्त्व रखती है।

प्रश्नबोध 48 प्राकृत गाथाओं की ऐसी लघु किन्तु अर्थगर्भित रचना है, जिसमें मनुष्य के जीवन से जुड़े अनेक प्रश्नों के माध्यम से उसके वास्तविक स्वरूप, आचरण, कर्तव्य, आत्मसंयम, कषाय, सद्गुण, धर्म, कर्म, मोक्ष, सामाजिक सम्बन्ध, कृतज्ञता, परोपकार, वात्सल्य तथा मानवीय मूल्यों का विवेचन किया गया है। कृति का आरम्भ मंगलाचरण से होता है और अंतिम गाथा में आचार्य वसुनन्दिजी महाराज स्वयं कृतिकार के रूप में अपना नाम तथा सम्मेदशिखर को रचना-स्थल के रूप में निर्दिष्ट करते हैं।

इस कृति की मौलिक विशेषता यह है कि आचार्य वसुनन्दिजी महाराज लौकिक जीवन में प्रयुक्त सामान्य शब्दों—मूर्ख, सुधर्मी, पापी, पुण्यात्मा, आर्य, शत्रु, सुन्दर, धनी, राजा, तीर्थ, गुरु, दास, महान्, मानव आदि—को नवीन नैतिक एवं आध्यात्मिक अर्थ प्रदान करते हैं। इस प्रकार *प्रश्नबोध* बाह्य मूल्यांकन से आत्ममूल्यांकन की ओर, बाह्य विजय से आत्मविजय की ओर और भौतिक सम्पदा से गुणसम्पदा की ओर ले जाने वाला ग्रन्थ बन जाता है।

प्रस्तुत शोधलेख में सम्पूर्ण 48 गाथाओं को प्राथमिक आधार बनाकर *प्रश्नबोध* का दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक एवं भाषिक-साहित्यिक अनुशीलन किया गया है। विशेष रूप से **प्राकृत गाथा को ज्ञान-संप्रेषण की सघन इकाई** मानते हुए उसके प्रश्नात्मक विन्यास, सूक्तिपरकता, अर्थ-संक्षिप्ति और जीवन-मूल्यपरकता का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द : आचार्य वसुनन्दिजी महाराज , प्रश्नबोध, प्राकृत, गाथा, जैन दर्शन , आत्मबोध, आत्मसंयम, नैतिकता, सामाजिक मूल्य, प्रश्नोत्तर परम्परा।

❖ प्रस्तावना

मनुष्य की बौद्धिक यात्रा प्रश्न से आरम्भ होती है। प्रश्न चेतना को जगाता है , जिज्ञासा को दिशा देता है और उत्तर की खोज व्यक्ति को आत्मचिन्तन तक ले जाती है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में प्रश्नोत्तर की यही पद्धति ज्ञान-संवाद का प्रभावशाली माध्यम रही है। आचार्य वसुनन्दिजी महाराज कृत *प्रश्नबोध* इसी दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही आचार्य वसुनन्दिजी महाराजजी सिद्ध, अरिहन्त एवं साधुओं को नमस्कार करके कहते हैं कि वे 'प्रश्नबोध' का कथन करते हैं—

णिरंजणे धुवे सिद्धे, अरिहंते णमंसिय।
साहुणो चित्तसुद्धीए, पण्हबोहं भणामि हं॥१॥

यह मंगलाचरण केवल धार्मिक औपचारिकता नहीं है। '**चित्तसुद्धीए**'—चित्त की शुद्धि —पूरे ग्रन्थ की वैचारिक दिशा का संकेत देती है। आगे की गाथाओं में भी शुद्ध मन , आत्मनिरीक्षण, सदाचार, समता, वैराग्य और कषाय -निवारण को प्रमुखता दी गई है इसलिए *प्रश्नबोध* को केवल प्रश्नोत्तरात्मक पद्य-संग्रह कहना पर्याप्त नहीं होगा। यह मूलतः **प्रश्न के माध्यम से आत्मबोध कराने वाली कृति** है।

❖ आचार्य वसुनन्दिजी महाराज और 'प्रश्नबोध' की मौलिकता

प्रश्नबोध की मौलिकता उसके विषय-विस्तार की अपेक्षा उसकी **दृष्टि और प्रस्तुति-पद्धति** में अधिक दिखाई देती है। आचार्य वसुनन्दिजी महाराज सामान्य जीवन के प्रश्नों को उठाते हैं , किन्तु उनके उत्तर सामान्य नहीं रहते। उदाहरणतः—

- शत्रु कौन है ?
- सुन्दर कौन है ?
- धनी कौन है ?
- राजा कौन है ?
- तीर्थ कौन-सा है ?
- गुरु कौन है ?
- दास कौन है ?
- महान् कौन है ?

- मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति क्या है ?

इन प्रश्नों के उत्तरों में बाह्य सामाजिक मानदण्डों को उलटकर **आन्तरिक नैतिक मानदण्ड** स्थापित किए गए हैं। अंतिम गाथा में कृतिकार स्वयं कहते हैं—

सासयसिद्धखेत्तम्मि, सम्मेदसिहरे इमो।
रइदो पण्णबोहो, आइरियवसुणंदिणा॥४८॥

अर्थात् शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में यह *प्रश्नबोध* आचार्य वसुनन्दिजी महाराज द्वारा रचा गया। उपलब्ध ग्रन्थ-पाठ के अनुसार यही गाथा कृति के कर्तृत्व एवं रचना-स्थान का आन्तरिक प्रमाण प्रस्तुत करती है।

❖ प्राकृत गाथा का विशेष महत्त्व

प्रश्नबोध का अध्ययन करते समय सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि यहाँ **प्राकृत केवल अभिव्यक्ति की भाषा नहीं, बल्कि विचार की संवाहक संरचना** है। गाथा का स्वरूप संक्षिप्त है। इसमें सीमित शब्दों में प्रश्न, उत्तर, मूल्य और निष्कर्ष को समाहित किया जा सकता है। यही कारण है कि *प्रश्नबोध* की गाथाएँ स्वतंत्र **सूक्तिपरक दार्शनिक इकाइयों** की तरह सामने आती हैं।उदाहरण—

किं लोए परमं तित्थं, सव्वदा सुद्धमाणसं॥६॥

केवल कुछ शब्दों में 'तीर्थ' जैसी व्यापक धार्मिक अवधारणा को 'शुद्ध मन' से जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार—

केण मोक्खो विरागेण, वेरग्गं मुत्तिकारणं।
केण बंधो ममत्तादो, रायो बंधस्स मूलगं॥२१॥

इसमें मोक्ष, वैराग्य, ममत्व और राग के पारस्परिक सम्बन्ध को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार गाथा में **संक्षिप्तता और अर्थविस्तार का अद्भुत सामंजस्य** है।

❖ 'प्रश्नबोध' का प्रारम्भिक मंगलाचरण और गुरु-परम्परा

प्रथम गाथा के पश्चात् द्वितीय एवं तृतीय गाथाओं में आचार्य वसुनन्दिजी महाराज अपने आचार्य-परम्परा एवं पूज्य साधु-आचार्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं—

चरियचक्कवट्टिं हं, सूरिं च संतिसायरं।

पायसिंधुं णिराकंखिं, जयकित्ति च णिप्पिह॥२॥
देसभूसण-सूरिं पि, वंदे देसस्स भूसणं।
विज्जाणंदं गुरुं मज्झं, सेट्ठ जुगपवट्टगं॥३॥

इन गाथाओं का महत्त्व केवल वन्दना में नहीं है। इनके माध्यम से कृतिकार अपने **ज्ञान-स्रोत और गुरु-परम्परा के प्रति कृतज्ञता** व्यक्त करते हैं। इससे *प्रश्नबोध* के आरम्भ में ही तीन आधार निर्मित होते हैं— **आध्यात्मिक श्रद्धा –गुरु-परम्परा –आत्मबोध।**

❖ वाणी, धर्म और चित्त

चतुर्थ गाथा में वाणी के प्रभाव का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन है—

किं कडू णिंदवाणी य, किं मिट्ट धम्मदेसणा।
एगा हियं विदारेज्जा, अण्णा चित्तं पसायदे॥४॥

कटु क्या है ? निन्दनीय वाणी। मिष्ट क्या है ? धर्मदेशना। एक हृदय को विदीर्ण करती है, दूसरी चित्त को प्रसन्न करती है।

यहाँ भाषा की नैतिक शक्ति को स्वीकार किया गया है। वाणी केवल संचार का माध्यम नहीं है; वह **चित्त पर प्रभाव डालने वाली शक्ति** है। आज के डिजिटल और सोशल -मीडिया युग में यह गाथा विशेष प्रासंगिक हो जाती है , क्योंकि शब्दों की असावधानी सामाजिक तनाव और मानसिक पीड़ा उत्पन्न कर सकती है।

❖ नैतिक व्यक्तित्व की पुनर्परिभाषा

पाँचवीं गाथा में चार प्रमुख प्रश्न उठते हैं—

को मूढो हिदघादी य, को सुधम्मी अहिंसगो।
को पावी कूरभावी को, पुण्णप्पा सरलो सया॥५॥

अर्थात्—

- हित का घात करने वाला मूर्ख है।
- अहिंसक सुधर्मी है।
- क्रूर परिणामी पापी है।
- सदा सरल रहने वाला पुण्यात्मा है।

यहाँ ज्ञान का आधार केवल बौद्धिकता नहीं , बल्कि **हित, अहिंसा, सरलता और शुभ परिणति** है। अर्थात् *प्रश्नबोध* में व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी बाह्य विद्वत्ता से अधिक उसके **परिणाम और आचरण** से होता है।

❖ करुणा और अन्तःतीर्थ

छठी गाथा—

किं गीदं महुरं लोए, करुणापूरिदं वचं।
किं लोए परमं तित्थं, सव्वदा सुद्धमाणसं॥६॥

यहाँ दो अद्भुत पुनर्परिभाषाएँ हैं — **मधुर गीत = करुणापूर्ण वचन** और **परम तीर्थ = शुद्ध मन।** यह कृति की दार्शनिक ऊँचाई को स्पष्ट करता है। आचार्य वसुनन्दिजी महाराज बाह्य धार्मिक प्रतीकों को नकारते नहीं, बल्कि उनके **अन्तरंग आध्यात्मिक अर्थ** को सामने लाते हैं।

❖ मर्यादा और शील

सातवीं गाथा में आर्य और श्रेष्ठ कुलांगना की अवधारणा प्रस्तुत है—

को अज्जो णेव लंघेज्जा, स-मज्जादं कयावि जो।
का सुकुलंगणा णेया, जा सया सीलरक्खिगा॥७॥

आर्य वह है जो अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता और श्रेष्ठ कुलांगना वह है जो सदैव शील की रक्षा करती है। यहाँ जन्मगत श्रेष्ठता की अपेक्षा **आचरणगत श्रेष्ठता** को प्रधानता दी गई है।

❖ आन्तरिक शत्रु और गुण-सौन्दर्य

आठवीं गाथा—

को सत्तू सकसायो हि, को अलसो अणुज्जमी।
को कुरूवो कुभावी य, को कंतो गुणभूसिदो॥८॥

अर्थात्—

- अपनी कषाय ही शत्रु है।
- अनुद्यमी व्यक्ति आलसी है।
- कुपरिणामी कुरूप है।

- गुणों से विभूषित व्यक्ति मनोहर है।

यहाँ सौन्दर्य का मानदण्ड बाह्य रूप नहीं , बल्कि **गुण** है। यह विचार *प्रश्नबोध* के मूल्य-दर्शन का केन्द्रीय सूत्र है— **गुण-सौन्दर्य > रूप-सौन्दर्य।**

❖ श्रवण, आत्मप्रशंसा और परनिन्दा

नवीं गाथा—

को बधिरो तिलोयम्मि, स-हिदं ण सुणेदि जो।
को मूगो सपसंसं जो, परणिंदं पकुव्वदे॥९॥

जो अपने हित की बात नहीं सुनता , वह तीनों लोकों में बधिर है ; जो अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करता है , वह मूक के समान है। यहाँ **आत्मप्रशंसा और परनिन्दा** को सामाजिक एवं नैतिक दोष के रूप में देखा गया है।

❖ बुद्धिमत्ता और सम्यक् चारित्र

दसवीं गाथा—

को धीमंतो सुभासेज्जा, णूणं बहुं सुणेदि जो।
कं पुज्जं सम्मचारित्तं, मुत्तीए वरसाहणं॥१०॥

बुद्धिमान वह है जो कम बोलता और अधिक सुनता है। पूज्य सम्यक् चारित्र है , जो मुक्ति का उत्तम साधन है। यहाँ ज्ञान को **श्रवणशीलता** से और पूज्यता को **चारित्र** से जोड़ा गया है।

❖ बालक, युवा और स्वतंत्रता

ग्यारहवीं एवं बारहवीं गाथाएँ जीवन के विकास और स्वतंत्रता की पुनर्व्याख्या करती हैं—

को बालो मुणेदव्वो, ण जाणेदि हियाहियं।
को जुवा जो सदुच्छाही, सुहकज्जेसु तप्परो॥११॥

को सतंतो अणाकंखी, को सुही तच्चचिंतगो।
को बद्धो विसयासत्तो, भवबंधपवङ्कगो॥१२॥

बालक वह है जो हित-अहित नहीं जानता; युवा वह है जो शुभ कार्यों में उत्साही है। स्वतंत्र वह है जो आकांक्षाओं से मुक्त है और बन्धा हुआ वह है जो विषयों में आसक्त है।

यहाँ उम्र की अपेक्षा **चेतना और आचरण** को महत्त्व दिया गया है।

❖ वास्तविक धन और वास्तविक गरीबी

तेरहवीं गाथा—

को णिद्धणो हि तिण्हालू, संतोसधणवज्जिदो।
को धणिगो सयायारी, सव्वलोयहिदे रदो॥१३॥

जो तृष्णा से युक्त और सन्तोष रूपी धन से रहित है , वही निर्धन है। सदाचारी और सर्वलोकहित में रत व्यक्ति ही वास्तविक धनवान है।

यहाँ धन की अवधारणा का **नैतिक पुनर्मूल्यांकन** हुआ है।

❖ सन्त, राजा और तीर्थ

चौदहवीं गाथा—

को संतो संतभावी य, को रायो जणपालगो।
हिदयरं सुतित्थं कं, भव-तारण-कारणं॥१४॥

शान्तभाव वाला सन्त है। प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाला राजा है। श्रेष्ठ तीर्थ वह है जो संसार-सागर से पार करने का कारण बने।

इससे स्पष्ट है कि— **सन्तत्व = शान्ति, राजत्व = लोकपालन, तीर्थत्व = भवतारण**

❖ क्रोध : गुणों को जलाने वाली अग्नि

पन्द्रहवीं गाथा—

को कादरो तिलोयम्मि, जो धम्मं णेव रक्खदे।
को य भयंकरो अग्गी, कोहो सुगुण-दाहगो॥१५॥

धर्म की रक्षा न करने वाला कायर है और क्रोध वह भयंकर अग्नि है जो श्रेष्ठ गुणों को जला देती है। यहाँ क्रोध का रूपक अत्यन्त प्रभावशाली है— **क्रोध = गुणदाहक अग्नि।**

❖ संयम ही चक्रवर्तित्व

सोलहवीं गाथा—

छक्खंड-जेदु-चक्की को, मणक्खजेदु-संजमी।
को रोयी अंधविस्सासी, को चोरगो महालसो॥१६॥

छः खण्डों पर विजय प्राप्त करने वाला चक्रवर्ती नहीं , बल्कि मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला संयमी भी वास्तविक अर्थ में चक्रवर्ती है। यहाँ बाह्य साम्राज्य की अपेक्षा **आन्तरिक साम्राज्य** को श्रेष्ठता दी गई है।

❖ आत्मसंघर्ष : वास्तविक युद्ध

सत्रहवीं गाथा—

किं जुद्धो अप्पसंघस्सो, को छली अप्पवंचगो।
को गुरु तच्चणाणी य, भव्वाणं भव-तारगो॥१७॥

ग्रन्थ के अनुसार युद्ध आत्मसंघर्ष है और स्वयं अपनी आत्मा को ठगने वाला ही वास्तविक छली है। तत्त्वज्ञानी तथा भवसागर से पार कराने वाला गुरु है। यहाँ *प्रश्नबोध* हिंसात्मक संघर्ष से ध्यान हटाकर **आत्मसंघर्ष** की ओर ले जाता है।

❖ स्वर्ग और नरक की आन्तरिक अवधारणा

अठारहवीं गाथा—

कत्थ सग्गो धम्मसालीसु, पुण्णभोगीसु सव्वदा।
णिरयो य दुरायारे, धम्मणासे गुणक्खये॥१८॥

धार्मिक और पुण्यवानों में स्वर्ग है ; दुराचार, धर्मनाश और गुणक्षय में नरक है। यहाँ स्वर्ग और नरक को केवल पारलौकिक लोक न मानकर **नैतिक अवस्थाओं** से भी जोड़ा गया है।

❖ ईर्ष्या और भक्ति

उन्नीसवीं गाथा—

का चित्तदाहगा इस्सा, को मंगल्लो सुपाहुणो।
को अंधो सव्वदा मोही, को सुभत्तो समप्पिदो॥१९॥

ईर्ष्या चित्त को जलाती है। श्रेष्ठ अतिथि मंगलकारी है। मोहग्रस्त अन्धा है और समर्पित व्यक्ति श्रेष्ठ भक्त है। इसमें मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों आयाम हैं।

- **सम्यग्ज्ञान, सिद्धान्त और कर्मविमुक्ति**

बीसवीं गाथा—

का कला सम्मणाणंसू, को भयभीदो हु संकिदो।
किं ण विच्चेज्ज सिद्धंतं, को पहू कम्मवज्जिदो॥२०॥

सम्यग्ज्ञान की एक किरण कला है ; शंकित व्यक्ति भयभीत है ; व्यक्ति को अपना सिद्धान्त नहीं बेचना चाहिए; कर्मों से रहित ही प्रभु हैं। यह गाथा **ज्ञान, निर्भीकता, सिद्धान्तनिष्ठा और कर्मक्षय** को एक साथ जोड़ती है।

- **वैराग्य और बन्धन**

इक्कीसवीं गाथा *प्रश्नबोध* के दार्शनिक विमर्श की आधारभूत गाथाओं में है—

केण मोक्खो विरागेण, वेरग्गं मुत्तिकारणं।
केण बंधो ममत्तादो, रायो बंधस्स मूलगं॥२१॥

मोक्ष का कारण वैराग्य है और बन्धन का कारण ममत्व ; राग बन्धन का मूल है। **दार्शनिक सूत्र – राग → ममत्व → बन्धन** और **वैराग्य → विरक्ति → मुक्ति**। यहाँ जैन दर्शन का कर्मबन्ध –मोक्ष विमर्श अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है।

- **वास्तविक राजा**

बाईसवीं गाथा—

को रंको स-गुणण्णो जो, मोहबंधनबद्धधी।
को भूवदी जिणिंदेहिं, उत्तो सगमणोजयी॥२२॥

अपने गुणों को न जानने और मोहबन्धन में बँधी बुद्धि वाला रंक है ; जिनेन्द्रों द्वारा वास्तविक राजा वह कहा गया है जो अपने मन को जीतता है। यह *प्रश्नबोध* की सबसे प्रभावशाली पुनर्परिभाषाओं में से एक है— **स्वविजेता ही वास्तविक राजा है।**

❖ प्रसन्नता और मधुर मुस्कान

तेईसवीं गाथा—

को पसण्णो सकालं जो, णयदि णेव णिप्फलं।
सुसेड्ढो उबहारो किं, मिदुहासं सुणिच्छलं॥२*॥

जो अपने समय को निष्फल नहीं जाने देता , वह प्रसन्न है। श्रेष्ठ उपहार मृदु एवं निष्कपट मुस्कान है। यहाँ **समय-प्रबन्धन और मानवीय सौहार्द** का अद्भुत समन्वय है।

❖ चिन्ता, अपेक्षा और पराधीनता

चौबीसवीं गाथा—

चिंताबद्धो दुही को य, सयावेक्खापरायणो।
को हु दासो पराहीणो, साहियार-विवज्जिदो॥२४॥

चिन्ता और अपेक्षा में डूबा व्यक्ति दुःखी है। जो पराधीन है और अपने अधिकारों से वंचित है , वही वास्तविक दास है। यहाँ दासता को सामाजिक स्थिति से आगे बढ़ाकर **मानसिक और अस्तित्वगत पराधीनता** से जोड़ा गया है।

❖ वास्तविक लाभ और सार्थक समय

पच्चीसवीं गाथा—

किं लाहो सविसुद्धीए, हेदुलद्धी सुहकारणं।
केण ससमयो धण्णो, सुधम्मचिंतणेण हि॥२५॥

आत्मविशुद्धि के कारणों की प्राप्ति ही वास्तविक लाभ है और सद्धर्म के चिन्तन से समय धन्य होता है। अर्थात् **समय का मूल्य उसकी अवधि से नहीं, उसके उपयोग से निर्धारित होता है।**

❖ आत्मनिरीक्षण और सम्बन्ध

छब्बीसवीं गाथा—

केण सुणिम्मलं चित्तं, अप्पणिरिक्खणेण हि।
कहं मरेज्ज संबंधो, सत्थविद्धि-पहावदो॥२६॥

आत्मनिरीक्षण से चित्त निर्मल होता है और स्वार्थवृद्धि के प्रभाव से सम्बन्ध नष्ट होते हैं। यह गाथा व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध का अत्यन्त आधुनिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है — **आत्मनिरीक्षण सम्बन्धों को स्वस्थ करता है; स्वार्थ सम्बन्धों को नष्ट करता है।**

- **भाग्य और आत्मदोष**

सत्ताईसवीं गाथा—

केण भग्गस्स णिम्माणं, सुहभावकिदेहि य।
किं च पक्खलदे जीवो, सदोसगोवणेण हि॥२७॥

शुभभाव और शुभकृत्यों से भाग्य का निर्माण होता है और अपने दोषों को छिपाने से जीव पतित होता है। यहाँ भाग्य को निष्क्रिय भाग्यवाद न मानकर **शुभ पुरुषार्थ का परिणाम** समझने की दिशा मिलती है।

- **विश्वास, हित और परार्थ**

अट्ठाईसवीं गाथा—

केण ठति सुसंबंधा, विस्सासेण हिदेण य।
पुरिसो अमरो केणं, परट्ठे सत्थचागदो॥२८॥

श्रेष्ठ सम्बन्ध विश्वास और हित से टिकते हैं। परार्थ में स्वार्थत्याग करने वाला पुरुष अमर होता है। यहाँ सामाजिक जीवन के दो मूल सूत्र हैं — **सम्बन्ध = विश्वास + हित** और **महानता = परार्थ + स्वार्थत्याग।**

- **क्षमा और मार्दव**

उनतीसवीं गाथा—

कोहाणल-समा का हु, खमा सीयलदायिणी।
माणदप्पदलं कं च, मद्दवं परमं बलं॥२९॥

क्रोधरूपी अग्नि को शांत करने वाली क्षमा है और मानरूपी दर्प को दलने वाला मार्दव परम बल है। यहाँ दो कषायों के सामने दो सद्गुण रखे गए हैं — **क्रोध, क्षमा, मान और मार्दव।**

❖ आर्जव और सन्तोष

तीसवीं गाथा—

किं मायाजालभेत्तुं च, अज्जवं गुणमंदिरं।
किं लोहहारगो उत्तो, संतोसो सुहवड्ढगो॥30॥

माया के जाल को भेदने वाला आर्जव है और लोभ को हरने वाला सन्तोष है। इससे नैतिक चतुष्टय पूर्ण होता है—

कषाय	**सद्गुण**
क्रोध	क्षमा
मान	मार्दव
माया	आर्जव
लोभ	सन्तोष

यह *प्रश्नबोध* के नैतिक मनोविज्ञान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

❖ साधु और श्रावक का प्राण

इकतीसवीं गाथा—

अणगारस्स पाणो किं, समत्तं हि णिरंतरं।
सावगस्स पुणो किं च, पत्तदाणं जिणच्चणं॥31॥

साधु का प्राण निरन्तर समता है और श्रावक का प्राण पात्रदान तथा जिनार्चन है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रन्थ साधु और श्रावक के लिए अलग-अलग **आचार-केन्द्र** निर्धारित करता है।

❖ सदाचार और चित्तशुद्धि

बत्तीसवीं गाथा—

केणं हु जीवणं पूदं, सयायारेण सव्वदा।
केणं च मलिणं चित्तं, वासणाए कसायदो।।32।।

जीवन सदाचार से पवित्र होता है और वासना तथा कषाय से चित्त मलिन होता है। यहाँ नैतिकता और मनोविज्ञान का सीधा सम्बन्ध दिखाई देता है।

- ❖ **दोषदृष्टि और दयाहीनता**

तैंतीसवीं गाथा—

केण अंधो पराणं च, दोसावलोयणेण हि।
दयाहीणपवित्तीए, पुज्जणिब्भच्छणेण वि।।33।।

दूसरों के दोषों को देखने, दयाहीन प्रवृत्ति तथा पूज्यजनों का अपमान करने से व्यक्ति 'अन्धा' होता है। यहाँ अन्धत्व केवल नेत्रों की दृष्टिहीनता नहीं, बल्कि **नैतिक विवेक के अन्धत्व** का प्रतीक है।

- ❖ **आत्मबन्ध के कारण**

चौंतीसवीं गाथा—

केहिं च बंधदे अप्पा, मिच्छत्ताविरदीहि वि।
असुहजोगवित्तीए, अणत्थेहि अहणिणसं।।34।।

आत्मा मिथ्यात्व, अविरति, अशुभ योग और अनर्थों से बँधती है। यह गाथा जैन कर्मदर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करती है।

- ❖ **प्रसन्नता और निर्मल दृष्टि**

पैंतीसवीं गाथा—

वदणं केण सोहेदि, पसण्णदाइ सव्वदा।
सुहणिम्मलदिट्ठीए, तेण लोयम्मि वल्लहो।।35।।

प्रसन्नता और शुभ -निर्मल दृष्टि से मुख सुशोभित होता है तथा ऐसा व्यक्ति लोक में प्रिय होता है। यहाँ सौन्दर्य का पुनः आन्तरिकीकरण हुआ है।

- ❖ **परम सुख**

छत्तीसवीं गाथा—

कससि उक्किट्टसोक्खं च, सहजे संतमाणसे।
परहिदे सया कम्म-हीणसिद्धीइ जाणह ॥36॥

उत्कृष्ट सुख सहज अवस्था , शान्त मन, परहित और कर्महीन सिद्धि में है। यहाँ सुख को भोग की मात्रा से नहीं, बल्कि **मन की शान्ति और परहित** से जोड़ा गया है।

- ❖ **महानता और निःस्वार्थ सेवा**

सैंतीसवीं गाथा—

को महंतो मुणेदव्वरो, णिस्सत्थोवयारगो।
माणं ण इच्छदे देदि, दायित्तु सिमरेदि णो ॥37॥

जो निःस्वार्थ उपकार करता है , सम्मान की इच्छा नहीं करता और देने के बाद उसे स्मरण भी नहीं रखता, वही महान है। यह आधुनिक **selfless service** की अवधारणा से संवाद करने वाला महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य है।

- ❖ **कृतज्ञता और व्यवहार**

अड़तीसवीं गाथा—

किं वड्ढेज्ज किदुण्हत्तं, माणुसत्तस्स लक्खणं।
किं जीवणस्स आयंसो, ववहारो णरस्स हि ॥38॥

कृतज्ञता को मनुष्यता का लक्षण माना गया है और मनुष्य का व्यवहार उसके जीवन का दर्पण है। यहाँ 'मानवता' को जैविक अस्तित्व से उठाकर **नैतिक चेतना** बनाया गया है।

- ❖ **चिन्तन का कारागार और ज्ञानामृत**

उनतालीसवीं गाथा—

किं बंधणगिहो णेयो, सया संकिण्णचिंतणं।
किं पिवित्तु ण संतुट्टो, णाणामियं हवेज्ज हि ॥39॥

संकुचित चिन्तन ही कारागार है और ज्ञानामृत का पान करने से संतोष प्राप्त होता है। यहाँ मानसिक बन्धन को **संकुचित विचार** से जोड़ा गया है।

❖ कर्म : जीव का नित्य सहचर

चालीसवीं गाथा—

सुंदरो केण मिच्चू वि, सुधम्मेण हि सव्वदा।
णिच्चं सहयरो को हु, कम्मं जीवाण केवलं॥४०॥

सद्धर्म से मृत्यु भी सुन्दर हो सकती है और जीव का नित्य सहचर कर्म है। यहाँ मृत्यु के भय को धर्मपूर्ण जीवन की दृष्टि से पुनर्परिभाषित किया गया है।

❖ अपराध-बोध और शुभभावना

इकतालीसवीं गाथा—

किं भारो जो ण दिक्खेदि, अवराहस्स बोहणं।
किं बीयं जम्मजम्मेसुं, फलदं सुहभावणा॥४१॥

अपराध का बोध ऐसा भार है जिसे दूसरे नहीं देख सकते। शुभ भावना वह बीज है जो जन्म - जन्मान्तर तक शुभ फल देती है। यहाँ **आन्तरिक अपराध-बोध** और **शुभभावना** का मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक विवेचन मिलता है।

❖ सद्गुणों की कीर्ति और अध्यात्म का मार्ग

बयालीसवीं गाथा—

किं पुप्फं सासयं लोए, सुगुणो कित्ति-पूरिदो।
पदचिण्हविहीणो किं, अज्झप्पस्स पहो सया॥४२॥

सद्गुणों से पूर्ण कीर्ति संसार का शाश्वत पुष्प है और अध्यात्म का मार्ग पदचिह्नों से रहित है। यहाँ आध्यात्मिक मार्ग को **आत्मानुभूति का निजी मार्ग** माना गया है।

❖ सत्संग और गुरु

तैंतालीसवीं गाथा—

णेयो दुब्भग्गवंतो को, साहुसंगविवाज्जिदो।
को अणाहो तिलोयम्मि, जहट्ठ गुरुबंचिदो॥४*॥

साधुसंग से वंचित व्यक्ति दुर्भाग्यशाली है और यथार्थ गुरु से वंचित व्यक्ति तीनों लोकों में अनाथ है। इससे गुरु और सत्संग को आध्यात्मिक जीवन के **मार्गदर्शक आधार** के रूप में स्थापित किया गया है।

❖ **वात्सल्य और सामाजिक एकता**

चवालीसवीं गाथा—

किं महुरं विसं पुज्ज-णिंदा गुललणं तहा।
किं जुंजदि च वच्छल्लं, सव्वलोयप्पिय-गुणो॥४४॥

पूज्यजनों की निन्दा और चापलूसी 'मधुर विष' है; वात्सल्य सबको जोड़ता है और सर्वलोकप्रिय गुण है। यह गाथा आधुनिक समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है — **चापलूसी सम्बन्धों को खोखला करती है; वात्सल्य सम्बन्धों को जोड़ता है।**

❖ **सज्जन ही समाज की वास्तविक सम्पत्ति**

पैंतालीसवीं गाथा—

जीविदे वि मिदो को जो, सुधम्मविमुहो सया।
किं लोयस्स सुसंपत्ती, सज्जणा पुण्णभायगा॥४५॥

जो जीवित होकर भी सद्धर्म से विमुख है, वह मृत के समान है। संसार की श्रेष्ठ सम्पत्ति पुण्यभागी सज्जन हैं। यहाँ समाज की सम्पत्ति को भौतिक संसाधनों से हटाकर **सज्जन मनुष्यों** में स्थापित किया गया है।

❖ **सामाजिक नैतिकता और गर्भपात/व्यभिचार**

छियालीसवीं गाथा—

का लोयम्मि महापावी, जा गब्भपादकारगा।
बहियाररदा णिच्चं, पुण्णवखयं करंति ते॥४६॥

ग्रन्थ में गर्भपात कराने तथा व्यभिचार में रत रहने वालों को महापापी कहा गया है और उन्हें पुण्यक्षय का कारण माना गया है। इस गाथा को उसके **ऐतिहासिक-जैन नैतिक संदर्भ** में पढ़ना चाहिए। आधुनिक अकादमिक प्रस्तुति में इसे समकालीन नैतिक -वैधानिक विमर्श से जोड़ते समय सावधानी आवश्यक होगी।

❖ वृद्ध-सेवा : घर ही तीर्थ

सैंतालीसवीं गाथा *प्रश्नबोध* की सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टि की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति है—

तित्थतुल्लो गिहो कस्स, सेवा वुड्ढाण जस्स हु।
जीवणस्स वरा सिद्धी, का समाही महुच्छवा॥४७॥

जिस घर में वृद्धों की सेवा होती है , वह घर तीर्थतुल्य है। जीवन की परम सिद्धि समाधि - महोत्सव है। यहाँ आचार्य वसुनन्दिजी महाराज ने **परिवार-सेवा को तीर्थ -मूल्य** प्रदान किया है। यह आधुनिक समाज में वृद्धावस्था , पारिवारिक उत्तरदायित्व और पीढ़ियों के सम्बन्ध के संदर्भ में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार है।

❖ कृतिकार का आत्मोद्घोष

अंतिम गाथा—

सासयसिद्धखेत्तम्मि, सम्मेदसिहरे इमो।
रइदो पण्णबोहो, आइरियवसुणंदिणा॥४८॥

यह गाथा पूरे ग्रन्थ को एक प्रकार की **रचनात्मक पूर्णता** प्रदान करती है। इसमें—

- रचना का नाम — *पण्हबोहो / प्रश्नबोध,*
- कृतिकार — आचार्य वसुनन्दिजी महाराज,
- रचना-स्थल — सम्मेदशिखर, का उल्लेख मिलता है।

❖ 48 गाथाओं की समग्र वैचारिक संरचना

सम्पूर्ण *प्रश्नबोध* को देखने पर इसकी गाथाएँ स्वतंत्र प्रश्नों का समूह मात्र नहीं हैं। उनमें एक क्रमबद्ध जीवन-दर्शन विकसित होता है। इसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

- **प्रथम चरण : व्यक्ति की पहचान।** गाथा 4–13। वाणी नैतिकता, अहिंसा, करुणा, मर्यादा, गुण, श्रवण, चारित्र, युवा चेतना, स्वतंत्रता, धन।
- **द्वितीय चरण : आत्मसंयम और आध्यात्मिकता।** गाथा 14–22। सन्त, राजा, तीर्थ, धर्म, क्रोध, संयम, आत्मसंघर्ष, स्वर्ग-नरक, ईर्ष्या, सिद्धान्त, वैराग्य, आत्मविजय।
- **तृतीय चरण : जीवन-व्यवहार।** गाथा 23–30। प्रसन्नता, मुस्कान, चिन्ता, पराधीनता, लाभ, समय, आत्मनिरीक्षण, सम्बन्ध, परार्थ, क्षमा, मार्दव, आर्जव, सन्तोष।
- **चतुर्थ चरण : साधना और चित्तशुद्धि।** गाथा 31–36। समता, पात्रदान, जिनार्चन, सदाचार, कषाय, दोषदृष्टि, आत्मबन्ध, निर्मल दृष्टि, परम सुख।
- **पंचम चरण : मानवता और सामाजिक दर्शन।** गाथा 37–47। निःस्वार्थ सेवा, कृतज्ञता, व्यवहार, ज्ञान, कर्म, शुभभावना, अध्यात्म, सत्संग, वात्सल्य, सज्जन, सामाजिक नैतिकता, वृद्धसेवा।
- **षष्ठ चरण : कृतिकार का आत्मोद्घोष** ।गाथा 48। आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज, सम्मेदशिखर, प्रश्नबोध।

❖ **दार्शनिक अनुशीलन**

- **आत्मविजय का दर्शन** – *प्रश्नबोध* का मूल दार्शनिक सूत्र है – **बाह्य विजय से अधिक महत्त्वपूर्ण आत्मविजय है।** राजा, चक्रवर्ती और वीर जैसे लौकिक पदों को आत्मसंयम से जोड़ा गया है। मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही वास्तविक चक्रवर्तित्व है।
- **राग और ममत्व** – गाथा 21 में राग-ममत्व को बन्धन का मूल बताया गया है। यहाँ मोक्ष को किसी बाहरी प्राप्ति की अपेक्षा **आसक्ति के क्षय** से जोड़ा गया है।
- **आत्मबन्ध** – गाथा 34 मिथ्यात्व, अविरति, अशुभ योग और अनर्थ को आत्मबन्ध के कारणों के रूप में प्रस्तुत करती है। इस प्रकार *प्रश्नबोध* का दर्शन मनुष्य को अपने भावों और कर्मों के प्रति उत्तरदायी बनाता है।

❖ **नैतिक अनुशीलन**

प्रश्नबोध का नैतिक दर्शन चार प्रमुख कषायों के सामने चार सद्गुणों को स्थापित करता है – **क्रोध – क्षमा, मान – मार्दव, माया – आर्जव, लोभ – सन्तोष।** गाथा 29–30 में इनका स्पष्ट विवेचन है। यह नैतिकता केवल निषेधात्मक नहीं है। ग्रन्थ यह भी बताता है कि दोष के स्थान पर कौन-सा सद्गुण विकसित किया जाना चाहिए। अतः इसकी नैतिक पद्धति है – **दोष-पहचान → प्रतिरोधक सद्गुण –आत्मपरिष्कार।**

❖ सामाजिक अनुशीलन

प्रश्नबोध व्यक्ति को समाज से पृथक नहीं करता। गाथा 26 में स्वार्थवृद्धि से सम्बन्ध-विनाश, 28 में विश्वास और हित से सम्बन्धों की स्थिरता , 37 में निःस्वार्थ सेवा , 38 में कृतज्ञता , 44 में वात्सल्य तथा 47 में वृद्धसेवा की प्रतिष्ठा की गई है। इस प्रकार सामाजिक जीवन के लिए ग्रन्थ के प्रमुख सूत्र हैं— **विश्वास + हित + कृतज्ञता + परोपकार + वात्सल्य + सेवा।**

❖ भाषिक एवं साहित्यिक अनुशीलन

- **प्रश्नात्मकता –** हर प्रश्न पाठक को सोचने के लिए बाध्य करता है।
- **सूक्तिपरकता –** गाथाएँ स्वतंत्र जीवन-सूत्र बन जाती हैं।
- **अर्थ-सघनता–** कम शब्दों में व्यापक दार्शनिक अर्थ।
- **पुनर्परिभाषा–** शत्रु, राजा, तीर्थ, धनी, सुन्दर, दास, महान् आदि शब्दों को नए अर्थ देना।
- **रूपकात्मकता–** क्रोध को अग्नि, सम्बन्ध-विनाश को मानसिक प्रक्रिया और चित्त को तीर्थ के रूप में प्रस्तुत करना कृति की साहित्यिक शक्ति को बढ़ाता है।
- **प्राकृत की सहजता–** प्राकृत गाथाओं का प्रवाह दार्शनिक विचारों को बोझिल होने से बचाता है। इसीलिए *प्रश्नबोध* में दर्शन और लोकव्यवहार के बीच सहज सेतु निर्मित होता है।

❖ 'प्रश्नबोध' में पुनर्परिभाषा की मौलिक पद्धति

पूरे ग्रन्थ का सबसे मौलिक साहित्यिक-दर्शनात्मक उपकरण है—**पुनर्परिभाषा**।

सामान्य अवधारणा	**'प्रश्नबोध' की दृष्टि**
शत्रु	अपनी कषाय
सुन्दर	गुणसम्पन्न
धनी	सदाचारी एवं लोकहितकारी
राजा	मन-विजेता
तीर्थ	भवतारण का साधन/शुद्ध मन
स्वतंत्र	आकांक्षामुक्त
दास	पराधीन
महान्	निःस्वार्थ उपकारी
मानवता	कृतज्ञता
श्रेष्ठ सम्पत्ति	सज्जन
तीर्थतुल्य घर	वृद्धसेवा वाला घर

यही पुनर्परिभाषात्मक शक्ति *प्रश्नबोध* को सामान्य नीतिग्रन्थ से अलग करती है।

❖ समकालीन एवं वैश्विक प्रासंगिकता

आज का वैश्विक समाज अनेक संकटों से जूझ रहा है—

- हिंसा और संघर्ष,
- असहिष्णुता,
- उपभोक्तावाद,
- असीमित आकांक्षा,
- मानसिक तनाव,
- सम्बन्धों में स्वार्थ,
- सामाजिक अविश्वास,
- वृद्धों की उपेक्षा,
- नैतिक दुविधाएँ।

इन परिस्थितियों में *प्रश्नबोध* की अनेक गाथाएँ वैश्विक मानवीय मूल्यों से संवाद करती हैं।

- **क्षमा** – संघर्ष-निवारण की शक्ति।
- **सन्तोष**– असीम उपभोग के विरुद्ध संतुलन।
- **आर्जव**– कपट के स्थान पर पारदर्शिता।
- **मार्दव**– अहंकार के स्थान पर विनम्रता।
- **वात्सल्य**– सामाजिक एकता का आधार।
- **कृतज्ञता**– मानवीय गरिमा का लक्षण।
- **परोपकार**– व्यक्तिवाद के स्थान पर लोकमंगल।
- **आत्मनिरीक्षण**– नैतिक परिवर्तन की आधारभूमि।

इस दृष्टि से *प्रश्नबोध* को केवल जैन धार्मिक ग्रन्थ के रूप में पढ़ना उसके व्यापक **मानवीय और सार्वभौमिक मूल्य-विमर्श** को सीमित करना होगा।

❖ समीक्षात्मक मूल्यांकन

समग्र अनुशीलन से *प्रश्नबोध* की निम्न प्रमुख विशेषताएँ सामने आती हैं—

1. लघु कलेवर, व्यापक आशय – 48 गाथाओं में जीवन-दर्शन का व्यापक निरूपण।

2. प्रश्नोत्तर की सक्रिय पद्धति– पाठक को निष्क्रिय श्रोता नहीं, बल्कि विचार-सहभागी बनाना।

3. प्राकृत गाथा की अर्थ-सघनता– दर्शन को स्मरणीय और संप्रेषणीय बनाना।

4. नैतिक पुनर्परिभाषा – लौकिक शब्दों को आध्यात्मिक एवं नैतिक अर्थ देना।

5. आत्मसंयम की प्रतिष्ठा– बाह्य विजय से अधिक आत्मविजय को महत्त्व।

6. सामाजिक संवेदना– विश्वास, हित, परार्थ, कृतज्ञता, वात्सल्य और वृद्धसेवा।

7. आध्यात्मिक अन्तर्मुखता – तीर्थ, स्वर्ग, राजा, विजय आदि अवधारणाओं का अन्तःकरण से सम्बन्ध।

8. वैश्विक मूल्य -सम्भावना – ग्रन्थ के अनेक मूल्य धर्म -सीमा से आगे बढ़कर सार्वभौमिक मानवीय विमर्श से जुड़ सकते हैं।

❖ शोध की सीमाएँ

अकादमिक दृष्टि से यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि *प्रश्नबोध* की गाथाओं में कई दार्शनिक अवधारणाएँ सूत्रात्मक रूप में आती हैं। उनका पूर्ण तात्त्विक विवेचन करने के लिए जैन आगम, तत्त्वार्थपरम्परा, आचारशास्त्र, प्राकृत काव्यशास्त्र तथा अन्य समकालीन /पूर्ववर्ती जैन ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित होगा।

❖ निष्कर्ष

आचार्य वसुनन्दिजी महाराज कृत *प्रश्नबोध* प्राकृत साहित्य की ऐसी महत्त्वपूर्ण मौलिक कृति है, जिसका आकार छोटा है , परन्तु उसका विचार -क्षितिज अत्यन्त व्यापक है। इसकी 48 गाथाओं में जीवन के अनेक प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं , किन्तु इन प्रश्नों का वास्तविक लक्ष्य बाहरी संसार को समझाना नहीं, बल्कि **मनुष्य को स्वयं से परिचित कराना** है। ग्रन्थ की मूल यात्रा को एक सूत्र में इस प्रकार कहा जा सकता है — **प्रश्न, जिज्ञासा, आत्मनिरीक्षण, दोष-पहचान, सद्गुण-विकास, आत्मसंयम, वैराग्य, कर्मबोध, आत्मोन्नति।** आचार्य वसुनन्दिजी महाराज की मौलिकता इस बात में है कि वे सामान्य शब्दों को असामान्य अर्थ प्रदान करते हैं। **शत्रु बाहर नहीं, कषाय है। विजय दूसरे पर नहीं, स्वयं पर है। राजत्व दूसरों पर शासन नहीं, अपने मन पर शासन है। धन संग्रह नहीं, सदाचार है।**

सुन्दरता शरीर नहीं, गुण है। स्वतंत्रता इच्छा की पूर्ति नहीं, इच्छा से मुक्ति है। महानता सम्मान पाने में नहीं, निःस्वार्थ देने में है। मानवता केवल मनुष्य होना नहीं , कृतज्ञ होना है। तीर्थ केवल स्थान नहीं , शुद्ध चित्त भी है। घर केवल निवास नहीं , वृद्धसेवा से तीर्थ बन सकता है। यही *प्रश्नबोध* की सबसे बड़ी वैचारिक उपलब्धि है।

प्राकृत गाथाएँ इस विचार-दर्शन को अत्यन्त सघन, लयात्मक और स्मरणीय रूप प्रदान करती हैं। अतः इस कृति का अध्ययन करते समय गाथा को केवल उद्धरण और हिन्दी अर्थ को केवल अनुवाद मानना पर्याप्त नहीं है। **मूल प्राकृत गाथा ही इस ग्रन्थ की दार्शनिक , नैतिक और साहित्यिक आत्मा है।** अन्ततः *प्रश्नबोध* पाठक के सामने सबसे बड़ा प्रश्न स्वयं रख देता है — **"जिस संसार को हम बदलना चाहते हैं , क्या उसके पहले हमने स्वयं को पहचानने का प्रयास किया है ?"** यही प्रश्न *प्रश्नबोध* को केवल एक प्राकृत कृति नहीं रहने देता ; वह उसे **आत्मबोध, आत्मसंयम, मानवीयता और वैश्विक नैतिकता के विमर्श का जीवंत ग्रन्थ** बना देता है।

❖ संदर्भ-सूची

- **प्राथमिक स्रोत**

1. **आचार्य वसुनन्दिजी महाराज**, *पण्ह-बोहो (प्रश्नबोध)*, उपलब्ध पुस्तक-पाठ, 48 गाथाएँ।
2. *प्रश्नबोध* में उपलब्ध मूल प्राकृत गाथाएँ, अन्वयार्थ एवं हिन्दी अर्थ।

- **अध्ययन के प्रमुख पाठ-खंड**

- गाथा 1–7 : मंगलाचरण, वाणी, नैतिकता, करुणा, तीर्थ और मर्यादा।
- गाथा 8–22 : कषाय, गुण, चारित्र, स्वतंत्रता, धन, धर्म, संयम, गुरु, वैराग्य और आत्मविजय।
- गाथा 23–30 : प्रसन्नता, सम्बन्ध, आत्मनिरीक्षण, परार्थ, क्षमा, मार्दव, आर्जव और सन्तोष।
- गाथा 31–36 : साधु-श्रावक धर्म , सदाचार, कषाय, आत्मबन्ध, निर्मल दृष्टि और परम सुख।
- गाथा 37–47 : निःस्वार्थता, कृतज्ञता, व्यवहार, ज्ञान, कर्म, शुभभावना, अध्यात्म, सत्संग, वात्सल्य, सज्जनता, सामाजिक नैतिकता एवं वृद्धसेवा।
- गाथा 48 : कृति, कृतिकार और रचना-स्थान का उल्लेख।